Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023

An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

Knowledgeable Research

ISSN 2583-6633

Vol.02, No.05, December,2023

http://knowledgeableresearch.com/

भारत में शिक्षा और समाज

शोध छात्रा-अर्चना

शिक्षाशास्त्र, सी0एम0जे0 विश्वविद्यालय,मेघालय,शिलांग

Email: archanayadavarchanayadav43@gmail.com

****

शोध सार : *इस दशक (1990 के दशक) की शुरूआत में भारत की आर्थिक नीतियों में बड़े बदलाव किए गए। हालांकि इनमें से कुछ बदलाव कम से कम एक दशक से घटित होने वाले थे लेकिन औपचारिक रूप से 'नई आर्थिक नीति' की घोषणा में जिस तरह की शब्दावली का प्रयोग किया गया, उसके कारण यह ज्यादा नाटकीय लगी। सरकारी नीति की पुरानी शब्दावली में 'नियोजन', मिश्रित अर्थव्यवस्था', 'आत्म-निर्भरता' और समाजवादी स्वरूप' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता था। इसतरह की शब्दावली 1950 के दशक में उत्पन्न हुई जब भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के दौर में भारत को औपचारिक रूप से गुटनिरपेक्ष रखने का विकल्प चुना, जिसमें भारत अपने पैरों पर खड़ा था, लेकिन कुछ हद तक वाम पक्ष की ओर झुका हुआ था। 1990 की नई शब्दावली में भी आत्मनिर्भर रहने के महत्व पर बल दिया गया, लेकिन इस समय दक्षिणपंथ (right) की ओर झुकाव देखा जा सकता था। इस नए महौल में सरकारी नीति और प्रभुत्वशाली विचार में 'उदारीकरण', 'निजीकरण', 'वैश्वीकरण', और 'बाजार अनुकूलता' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा।*

संकेत शब्द: *गुटनिरपेक्ष, सांस्कृतिक आधुनिकीकरण, नियोजन', मिश्रित अर्थव्यवस्था', 'आत्म-निर्भरता' और समाजवादी स्वरूप'।*

****

प्रस्तावना

शिक्षा के वर्तमान परिदृश्य में तीन प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हैं : पहली प्रवृत्ति प्राथमिक और माध्यमिक स्तर से आगे शिक्षा हासिल करने वाले बच्चों की संख्या में अत्याधिक कमी आने से सम्बन्धित है; दूसरी प्रवृत्ति उच्च शिक्षा की प्रधानता से सम्बन्धित है जिसमें समाज के सांस्कृतिक रूप से प्रभावशाली और आर्थिक रूप से मजबूत वर्ग राज्य के संसाधनों का उपयोग

Received Date: 14.12.2023
Publication Date: 30.12.2023

Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023
An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

राज्य तंत्र पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए करते हैं; और तीसरी प्रवृत्ति व्यवस्था में निहित विभाजन से सम्बन्धित है, जो वर्ग हितों की रक्षा करता है। प्रश्न यह है कि ये प्रवृत्तियाँ नई आर्थिक नीति के भविष्य को किस प्रकार प्रभावित करेंगी और खुद इनमें किस तरह का बदलाव आयेगा ? ये परिवर्तन भी पूरी तरह से खुद भारत द्वारा नहीं किए गए थे। शीत युद्ध के अन्त के कारण भारत और अन्य स्थानों के माहौल में काफी बदलाव हुआ। इसके कारण, विशेष रूप से इलेक्ट्रॉनिक और संचार के क्षेत्र में तकनीकी बदलाव भी हुए। पूरी दुनिया में पूँजी के मालिकों और प्राकृतिक तथा श्रम संसाधन रखने वाले लोगों के बीच बड़े पैमाने पर समयोजन हो रहा है।1 पश्चिम में बदलावों को कुछ हद तक नाटकीय रूप से देखा जाता रहा है। वहाँ के कई लोगों ने इसे इतिहास के अन्त के रूप में देखा। भारत में अमूमन बदलावों के बारे में यह माना जाता है कि यह भी गुजर जाएगा, लेकिन नई नीतियों और उनके कारण समाज और राजनीति में होने वाले बदलावों ने काफी गरमा-गरम विवाद को जन्म दिया है। मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों के मन में बचपन की यादों में महात्मा गाँधी और नेहरू की छाप अभी मौजूद है। ऐसे लोग इन बदलाव को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और वे इनसे हतप्रभ भी हैं। कल तक राज्य हमारे इस विश्वास को दर्शाता था कि गाँवों की आत्मनिर्भरता की कुर्बानी दिये बगैर भारत का आधुनिकीकरण किया जा सकता है। अब अचानक हम यह पाते है कि राज्य ने अपनी बातों को कहने का अन्दाज बदल दिया है तथा राज्य और गाँवों दोनों के ही भूगोल को तरल और पारगम्य माना जाने लगा है। हम अपने बच्चों को यह पढ़ाने में असहज महसूस करते हैं कि अन्तनिर्भर दुनिया में आत्मनिर्भरता और संयम मिथक हैं,नई आर्थिक नीतियों के भविष्य के बारे में वर्तमान बहस को संक्षेप में तीन रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। पहली स्थिति यह है कि नई नीति को जबरदस्त सफलता मिलेगी, यह विश्व बैंक सहित अपने अन्य प्रतिपादकों द्वारा तय किए गए लक्ष्यों को हासिल करेगी; भारत निर्यात को बढ़ावा देकर तथा विदेशी पूँजी को आकर्षित करके 'आर्थिक संवृद्धि की उच्च दर' हासिल करेगा। उत्पादकता बढ़ने का लाभ समाज के सबसे निचले स्तर तक जाने के कारण गरीबी और बेरोजगारी कम होगी। यह भी याद रखने की आवश्यकता है कि जनसंख्या का यह निचला हिस्सा देश की कुल जनसंख्या का तकरीबन 60 से 70 प्रतिशत भाग है। इस स्तर पर रहने वाले लोग भूमिहीन ग्रामीण मजदूर, छोटी जोत वाले किसान, ग्रामीण कारीगर, घरेलू उद्योगों, असंगठित क्षेत्रों और भवन-निर्माण जैसे कामों में लगे शहरी मजदूर हैं। इस पहली स्थिति में

अर्चना
Received Date: 14.12.2023
Publication Date: 30.12.2023

Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023
An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

यह माना जाता है कि जनसंख्या का यह बड़ा हिस्सा धीरे-धीरे साक्षर श्रम-शक्ति में बदल जायेगा तथा यह पूरी तरह से मौद्रीकृत खुली अर्थव्यवस्था में भागीदारी करने में समर्थ हो जायेगा।

दूसरी स्थिति यह कि चूँकि निर्यात पर निर्भर अर्थव्यवस्था सामाजिक विभाजनों को ज्यादा गहरा करेगी, इसलिए यह जनसमूह राजनीतिक रूप से असान्त निम्न वर्ग (underclass) का निर्माण करेगा। एक छोटा अभिजन समूह वस्तुओं और सेवाओं के वैश्विक आदान – प्रदान में सक्रिय रूप से भागीदारी करेगा, और अर्थव्यवस्था से होने वाले अधिकांश लाभ पर इसका कब्जा होगा। ऐसी स्थिति में नई आर्थिक नीतियाँ आपदा की ओर ले जाती हैं। राज्य धनधान लोगों की सुरक्षा में अपने संसाधन लगाएगा, ताकि गरीबों का दुख और उनका विरोध अमीर लोगों के आनन्द और उनके हितों में किसी तरह की बाधा न डाले। भारत क्रज के जाल मे फँस चुका है, इसके कारण स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में इसके पहले से खस्ताहाल प्रयास और भी खराब होंगे। तेजी से बड़ते उद्योगीकरण, खनन, बाँध निर्माण, वनों की कटाई, परिवहन और शहरीकरण से पर्यावरण की छोटे किसानों, काश्तकारों तथा आदिवासियों की जीविका को पूरा करने की क्षमता कम होती है। राज्य को वंचित वर्गों के बीच लगातार होने वाली असंगठित उथल-पुथल को शान्त करने के लिए अपने लोकलांत्रिक चरित्र को छोड़ना पड़ता है तथा वह एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के एजेण्ट के रूप में काम करता है।तीसरी स्थिति में नई आर्थिक नीतियाँ न तो पूरी तरह सफल होंगी और न ही ये समाप्त होंगी। अमीर लोगों के उपभोग का स्तर पश्चिमी समाज के स्तर तक पहँच जाएगा तथा हाशिए पर रहने वाले निम्न वर्ग को वैश्वीकृत उत्पादन और सेवाओं के साथ एक कम महत्वपूर्ण सम्बन्ध में शामिल किया जाएगा। बांकी लोग वैश्वीकरण की गति पर लगाम लगाने के राजनीतिक साधन खोज लेंगे। उच्चतर संवृद्धि दर की एक छोटी अवधि के अर्थव्यवस्था में मन्दी आएगी और विदेशी पूँजी समाप्त हो जाएगी। बड़े पैमाने पर निजीकरण की पृष्ठभूमि में राज्य नियामक भूमिकाओं के साथ – साथ बचे हुए संसाधनों के वितरण में भी प्रमुख भूमिका निभाएगा। नई नीतियों के परिणाम को पुरानी प्रवृत्तियों से अलग करना अत्यन्त कठिन होता जाएगा।

भारत में प्रासंगिक कारकों की बहुलता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यहाँ तीनों स्थितियों की सम्भावना है, लेकिन मैं अपनी वरीयताओं के बारे में आखिर में ही बताऊँगा। मैं शिक्षा की खिड़की से दुनिया को देखने का आदी हूँ परन्तु यह सुस्पष्ट भविष्यवाणी करने के लिए उपयोगी नहीं है। शिक्षा को भविष्य के लिए एक अच्छा द्वार माना जाता है;

Received Date: 14.12.2023
Publication Date: 30.12.2023

Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023
An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

हालाँकि यह भविष्य को देखने के लिए एक अच्छी खिड़की नहीं है। इस सन्दर्भ में एक बात तो यह है कि – ये ऐसी बातें होती हैं जिन्हें बच्चे और युवा अपने व्यापक सामाजिक परिवेश से समाजीकरण के रूप में सीखते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो अँग्रेजों की औपनिवेशिक शिक्षा से सिर्फ अधीनस्थ अधिकारी या क्लर्क ही जन्म लेते, राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले विचारक नहीं।

इसी तरह, सोवियत संघ को बच्चों की उस तीसरी पीढ़ी द्वारा बचा लिया जाता, जिनकी परवरिश यह शिक्षा देकर की गई थी कि सोवियत संघ एक अद्भुत सफलता था। पिछले छहः वर्षों में हमारे देश में तथाकथित आर्थिक सुधारों को सक्रियतापूर्वक लागू किया गया है लेकिन इस अवधि में शिक्षा की स्थिति विशेष रूप से भ्रामक रही है। इस अवधि के दौरान यह उम्मीद की गई थी कि राज्य विश्व बैंक के निर्देशों को मानते हुए खुद को कल्याणकारी कामों के बोझ से मुक्त करेगा लेकिन राज्य के द्वारा बड़े पैमाने पर साक्षरता और प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रमों को आरम्भ किया गया है। निश्चित रूप से, प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रमों को विदेशी सहायता और ऋण प्राप्त था और इसमें तथा साक्षरता की परियोजनाओं में जिन पद्धतियों का प्रयोग किया गया, उससे इन कार्यक्रमों में पूरा भरोसा पैदा नहीं होता है; किन्तु इस बात से शायद ही कोई इन्कार कर सकता है कि इन राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों ने उन आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जिनकी राज्य द्वारा लम्बे समय से उपेक्षा की गई थी। इसी तरह, संविधान में जल्द होने वाले संसोधन में प्राथमिक शिक्षा को एक मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया जाएगा; हो सकता है कि यह नीतिगत स्तर पर किसी महत्वपूर्ण बदलाव को न दर्शाए, लेकिन न्यायिक सक्रियतावाद (activism) और स्वैच्छिक संगठनों के बीच बच्चों की शिक्षा में रूचि में वृद्धि के सन्दर्भ में हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि संवैधानिक संसोधन शिक्षा की व्यवस्था में, विशेष रूप से, नौकरशाही में जवाबदेही की माँग को बढ़ावा देंगे। ये घटनाक्रम संरचनात्मक समायोजन और उदारीकरण की नीतियों के सन्दर्भ में अमूमन इस्तेमाल की जाने वाली शब्दावली से सुसंगत नहीं लगते हैं। शायद इन नीतियों के वास्तविक निहितार्थ का सामने आना अभी बाकी है। मसलन, ये दावा किया जाता है कि जन साक्षरता और प्राथमिक शिक्षा अब राज्य की प्राथमिकताएँ बन चुकी हैं, लेकिन इसका वास्तविक परीक्षण तभी होगा जब इन क्षेत्रों के लिए बाहरी आर्थिक स्रोत समाप्त हो जाएँगे, जो कुछ समय बाद होना ही है। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि विश्वविद्यालयों के बजट में कटौती शिक्षा पर उदारीकरण की नीतियों के नकारात्मक प्रभाव का एक आरम्भिक चिन्ह है। इस सन्दर्भ में वे

Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023
An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

प्रस्तावित निजी विश्वविद्यालय विधेयक का भी उल्लेख करते हैं। कुछ विदेशी विश्वविद्यालयों ने जिस मजबूत और खुले रूप में बेंचने के कौशल के साथ भारतीय छात्रों को लुभाना शुरू किया है, वह इसका एक और लक्षण है। बहरहाल, यह फैसला करना कठिन है कि ये लक्षण किस सीमा तक वास्तविक परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं, क्योंकि शिक्षा की भारतीय व्यवस्था में बहुत गहरी जड़ें जमाए और काफी हद तक निरन्तर प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं। ये प्रवृत्तियाँ उन्नीसवीं सदी के दूसरे भाग में इस व्यवस्था के निर्माण के समय से ही इसमें गहराई से समाई हुई है। हाल के समय में हुए बदलावों के दीर्घकालिक प्रभावों का मूल्यांकन करने के लिए हम एक लम्बे समय से उभरकर सामने आ रही दीर्घकालिक प्रवृत्तियों पर विचार कर सकते हैं।

भारत की आजादी के पचास वर्षों बाद इन प्रवृत्तियों द्वारा गृहण किए जाने वाले स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं और फिर इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि उभरती हुई आर्थिक व्यवस्था इन्हें किस तरह प्रभावित कर सकती है। वर्तमान चर्चा के लिए मैं इन प्रवृत्तियों को तीन भागों में विभाजित करूँगा।पहले समूह में हम प्राथमिक या जूनियर माध्यमिक स्तर से आगे बढ़ने वाले बच्चों की संख्या में भारी गिरावट से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को रख सकते हैं। भारत में स्कूलों की संख्या (सारणी 1) पर एक सरसरी निगाह जालने से यह बात सामने आती है कि यदि संविधान-निर्माताओं की इच्छा के अनुरूप प्राथमिक शिक्षा में नामांकन कराने वाले सभी बच्चे आठ वर्षों की प्राथमिक शिक्षा पूरी करते हैं , तो जूनियर माध्यमिक या ‘मिडिल’ स्कूलों को इन सभी बच्चों को नामांकन देने में गहरी समस्या का सामना करना पड़ेगा। भारत में कुल 5,90,421 प्राथमिक स्कूल हैं, लेकिन सिर्फ 1,71,000 से थोड़े ज्यादा माध्यमिक स्कूल हैं। मिडिल और हाई स्कूलों के बीच का अनुपात कुछ हद तक बेहतर है। इसका अर्थ यह है कि जो बच्चे आठ वर्षों तक स्कूली शिक्षा हासिल कर लेते हैं, उनके उच्च शिक्षा हासिल करने की सम्भावना ज्यादा होती है। कम से कम वे पहली सार्वजनिक परीक्षा देने तक स्कूल में रह सकते हैं, जिसका मैं बाद में उल्लेख करूँगा। बच्चों के स्कूली शिक्षा से बाहर निकलने की परिघटना आरम्भिक कक्षाओं में ही सबसे ज्यादा होती है। आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार पहली कक्षी में नामांकन कराने वाले 44 प्रतिशत बच्चे पाँचवीं कक्षा तक पहुँचने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं और पहली कक्षा में नामांकन कराने वाले बच्चों कुल संख्या का 63 प्रतिशत

अर्चना
Received Date: 14.12.2023
Publication Date: 30.12.2023

Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023
An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

आठवीं कक्षा तक नहीं पहुँच पाता है। ये आँकड़े निराशाजनक हैं, लेकिन ये पूरी तरह ठीक नहीं है, और वास्तविक स्थिति इससे भी ज्यादा बुरी है।[2]

जब से वर्तमान व्यवस्था स्थापित हुई है, उस समय से नामांकन या उपस्थिति के बिल्कुल सही आँकड़ों को हासिल करना एक समस्या बनी हुई है और यह समस्या विशेष रूप से ग्रामीण भारत में मौजूद है, जहाँ तीन-चौथाई जनसंख्या रहती है। 1977-22 की पंचवर्षीय समीक्षा में यह उल्लेख किया गया कि जब संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में एक दिन में 100 स्कूलों की जाँच की गई तो शिक्षकों द्वारा दावा किया गया कि कुल नामांकन 8,303 था तथा औसत उपस्थिति 5,516 थी जबकि एक दिन की वास्तविक उपस्थिति 4,903 थी। उत्तर प्रदेश के एक गाँव का दौरा करने पर आज भी यह बात सामने आएगी कि स्थिति अभी भी बदली नहीं है और बढ़ा-चढ़ाकर बताने की प्रवृत्ति इसे और भी खराब करती है। हालाँकि राज्य के दस्तावेज बताते हैं कि उत्तर प्रदेश में ड्रॉप (Dropout) की दर राष्ट्रीय औसत से कम है, यहाँ तक कि यह कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और गुजरात जैसे राज्यों से भी कम है, जिनके बारे में हमें यह पता है कि उनकी प्राथमिक स्कूल की व्यवस्था उत्तर प्रदेश से बेहतर है। तथ्य यह है कि हम किसी भी तरह के आँकड़ों के आधार पर, विशेष रूप से उत्तर भारत की कम साक्षर हिन्दी पट्टी में ग्रामीण प्राथमिक शिक्षा की वास्तविकता के बारे में निर्णय नहीं ले सकते हैं। जनगणना के आँकड़ों और शिक्षा मंत्रालय – जिसे 1980 के दशक के मध्य से मानव संसाधन विकास मंत्रालय के रूप में जाना जाता है – द्वारा एकत्रित आँकड़ों के बीच का अन्तर काफी समय पहले महसूस कर लिया गया था; और हाल में आई एक रिपोर्ट में भी यह स्वीकार किया गया कि ऐसा प्रतीत होता है कि सूचना के दो स्रोतों के बीच कोई मेल नहीं है।हाल के वर्षों में सही आँकड़ों को हासिल करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रूचि दिखाई गई है और इस काम के लिए आर्थिक संसाधन भी उपलब्ध कराए गए हैं। साफ तौर पर, इसका कारण यह है कि बाहरी निवेशकों द्वारा किसी क्षेत्र विशेष में निवेश करने का फैसला वहाँ उपलब्ध श्रम की गुणवत्ता से भी प्रभावित होता है। बढ़ा-चढ़ाकर की जाने वाली रिपोर्टिंग के मूल कारणों की अभी भी उपेक्षा की जा रही है, हालाँकि अँग्रेजों के समय से ही ये कारण ज्ञात रहे हैं। बुनियादी कारण प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों की अधीनस्थ और दरअसल शक्तिहीन स्थिति है।

अर्चना
Received Date: 14.12.2023
Publication Date: 30.12.2023

Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023
An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

कई दशकों से उच्चतर अधिकारियों ने शिक्षकों का समाजीकरण और प्रशिक्षण इस प्रकार किया है कि वे गलत रिकॉर्ड रखें। इश प्रशिक्षण के चलते ही हमारे पास बहुत सीधे तथ्यों के बारे में भी गलत ज्ञान है। मसलन, हमें इस बारे में सही जानकारी नहीं मिलती है कि कितने बच्चों का नामांकन हुआ है, कितने बच्चे कक्षा में आते हैं और कितने बच्चे अगली कक्षा में जाने के लिए उत्तीर्ण हुए हैं। हर कोई यह देख सकता है कि आँकड़ों में गड़बड़ी है फिर भी आँकड़ों का यह खेल चलता रहता है। हमारे पास तब तक ग्रामीण शिक्षा के लिए बेहतर योजना बनाने का आधार नहीं हो सकता है, जब तक कि नामांकन और उपस्थिति के रिकॉर्ड को ईमानदारी से दर्ज करने में शिक्षक अपने आप को समर्थ और आजाद महसूस न करें। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पिछले लगभग तीन दशकों से स्कूल को जल्द छोड़ने की दर लगभग स्थिर बनी हुई है। इस सन्दर्भ में कई पुरानी और गहरे स्तर पर जड़ जमा चुकी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जा सकता है – पाठ्यक्रम और स्कूल की पुस्तकों का शहरी पूर्वाग्रह, शिक्षकों के कार्य की स्थितियों तथा गैर-वेतन वाले खर्च से सम्बन्धित राशि का अभाव होना। लेकिन यह गहरे सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को भी दर्शाता है जो 1960 के दशक में अपनाई गई खाद्य नीति के विकल्पों तथा इसी दशक से वैश्विक और राष्ट्रीय विकासवाद की परिघटना के सामान्य पैटर्न से सम्बन्धित हैं।

आजादी के बाद के पहले दशक में महात्मा गाँधी से प्रभावित 'बुनियादी' शिक्षा कार्यक्रम में यह कोशिस की गई कि प्राथमिक शिक्षा को ग्रामीण शिल्प से जोड़ा जाए, लेकिन 1960 के दशक के मध्य में इस प्रयास को छोड़ दिया गया। उस समय अपनाई गई नई रणनीति में इस बात पर ध्यान दिया गया कि बड़ी और अच्छी जमीन के मालिकों के लिए दीर्घकालिक शैक्षिक अवसरों को बढ़ावा दिया जाए। 1960 के दशक के मध्य में शिक्षा आयोग ने भूमि के अत्यन्त अन्यायपूर्ण वितरण का सन्दर्भ देते हुए यह गणना की कि 'वर्तमान में (कुल 50 मिलियन खेतों में से) 15 एकड़ या उससे ज्यादा के 6 मिलियन खेत हैं...यदि हम यह कल्पना करते हैं कि एक वर्ष में तीन प्रतिशत स्वामित्व में बदलाव होगा, तो इसका अर्थ है कि प्रत्येक वर्ष 2,00,000 किसान ऐसे खेतों को विरासत में पाएँगे। यह सोचना सही लगता है कि 1986 तक, इनमें से 50 में से एक खेतिहर स्नातक होगा। इस आयोग ने नई कृषि रणनीति को स्वीकार किया जिसका लक्ष्य बड़े भू-स्वामियों को नके भौतिक अवसरों को बढ़ाने में समर्थ बनाना था। इस रणनीति को हरित क्रान्ति (green revolution) के नामं से जाना गया। इस रणनीति का लक्ष्य था कि नए संकर (hybrid) बीजों के प्रयोग से भारत को गेहूँ और चावल के उत्पादन में आत्मनिर्भर

Knowledgeable Research *ISSN 2583-6633* Vol.02, No.05, December, 2023
An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

बनाया जाए। गौरतलब है कि इन संकर (hybrid) बीजों के लिए बड़े पैमाने पर रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और पानी की आवश्यकता थी। इस रणनीति ने अपना लक्ष्य हासिल किया, लेकिन इसके लिए एक बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। छोटी जोत वाले किसान दरिद्र हो गए, क्षेत्रीय असमानताएँ गहरी हुईं तथा प्राकृतिक वातावरण का क्षरण हुआ। यह नया नजरिया बड़े स्तर के किसानों पर निर्भर था; इन किसानों के राजनीतिक समूहों ने पहले से ही कमजोर भूमि सुधार के कार्यक्रम को और भी ज्यादा कमजोर कर दिया। इनके प्रभुत्व ने 1970 के दशक में लोकलुभावनवादी (populist) राजनीति को प्रोत्साहित किया। बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ, गरीब लोग शहरों की झुग्गियों में बसने लगे, समुदाय और परिवार के टूटने का गाँवों में निरन्तर बड़ने वाली बच्चों की आबादी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। नई नीति से विरोधाभासी नतीजे सामने आए। मसलन, इससे शिशु मृत्यु दर में गिरावट आई, किन्तु बच्चों के पोषण और सेहत में कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हुआ। निरपेक्ष (समूची) भुखमरी में गिरावट आई लेकिन अभी भी लम्बे समय से चली आ रही भूख और बीमारी का अस्तित्व कायम रहा। यह कुछ हद तक उच्च नामांकन परन्तु खराब उपस्थिति और स्कूल जल्दी छोड़ देने की परिगटना की तरह ही था। परम्परा के दबाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह उम्मीद करना ठीक लगता है

भारत में आने वाले वर्षों में सहभागी लोकतंत्र के विकास के साथ भारत पश्चिम को यह याद दिलाने में सफल होगा कि उसने अपने निर्माण में क्या खोया है। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि भारत पश्चिम पर काफी ध्यान देता रहा है और यह भारत की कल्पनाशीलता को रोकने का काम करता रहा है और भविष्य में भी इसके ऐसा ही रहने की उम्मीद है।

संदर्भग्रंथसूची–

सत्यकेतु विद्यालंकाट ''प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन'' श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली 2002।

पी. रस्तोगी ''हिन्दू राज्यशास्त्र'' विवके प्रकाशन 136 कालेज रोड हीपोटैंक मेरठ 2000।

झा डी. एन. ''प्राचीन भारत'' पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 2002।

गोस्वामी सुधा ''भारत वर्ष की चर्चित महिलाएं'' उपकार प्रकाशन आगरा–2003

A. Mayor , Pilot Project in India, University of California Press, Delhi, 1958.

A. R. Desai, Rural Sociology in India, Popular Prakashan, 1969.

अर्चना

Received Date: 14.12.2023
Publication Date: 30.12.2023